वैदिक काल में
भारत की शिक्षा प्रणाली का विकाश

वर्तमान अतीत से ही जीवनी शक्ति लेता है। किसी भी देश का अतीत उसके वर्तमान और भविष्य का प्रेरणास्रोत होता है। हमारा भारत धर्ममय जीवन से बना। जीवन के सभी अंगों में धर्म का प्राधान्य था। वास्तविकता है यह, कि भारतीय संस्कृति धर्म से ओतप्रोत है। हमारे पूर्वजों ने जीवन की जो व्याख्या की है और अपने कर्तव्यों का जो निर्धारण किया है, उसके पीछे आधिभौतिक कारण न होकर आध्यात्मिक कारण ही थे। उन्होंने केवल भारतीयता का ही विकास नहीं किया, अपितु मानवता का विकास करना ही उनका एकमात्र उद्देश था। उनके लिये वसुधा कुटुम्ब थी - वसुधैव कुटुम्बकम्।

प्राचीन भारतीय जीवन का एक उद्देश था। एक आदर्श था और उस आदर्श की प्राप्ति संसार के समस्त भौतिक एश्वर्य से उच्चतर समझी गई। प्राचीन भारत की शिक्षा का विकास भी इसी आधार पर हुआ। भारतीय शिक्षा और विज्ञान का विकास केवल ज्ञान के लिये या सुख के लिए न होकर धर्म के मार्ग पर चलकर मोक्षप्राप्ति तक पहुंचने के लिये था।

मैकमिलन ने इसी तथ्य को स्वीकारते हुये लिखा है- "प्राचीनतम् वैदिक काल के सृजनकाल से ही हम भारतीय साहित्य पर एक प्रकार से लगभग एक हजार वर्ष तक धार्मिक छाप लगी हुयी पाते हैं। यहाँ तक, कि वैदिक काल के वे अन्तिम ग्रन्थ, जिन्हें हम धार्मिक नहीं कह सकते, अपना धर्मप्रसार का उद्देश रखते हैं। यह वास्तव में "वैदिक" शब्द से प्रकट होता है, क्योंकि वेद का अर्थ ज्ञान होता है। तथा सम्पूर्ण पवित्र ज्ञान का साहित्य की शाखा के रूप में बोध करता है। (डॉ० रा. कु. मुखर्जी, एनसिएंट जण्डियना एजू० १९४७)

जीवन तथा संसार की क्षणभंगुरता का अनुमान तथा मृत्यु एवं भौतिक सुखों की सारहीनता के भाव ने भारतीय विद्या को आधाररूप दिया और सम्पूर्ण शिक्षा-परम्परा इन्हीं सिद्धान्तों पर विकसित हुई, यही कारण था, कि भारतीय ऋषियों ने एक अदृष्य संसार और आध्यात्मिक सत्ता के गीत गाये और अपने सम्पूर्ण जीवन को भी तदनुरूप ढाला।

प्राचीनकाल में विद्यार्थी इस संसार के सम्पूर्ण उथल - पुथल भरे जीवन से परे प्रकृति की गोद में सुन्दर अरण्यों में आश्रमों में अपने गुरू चरणों में बैठकर जीवन की समस्याओं का श्रवण, मनन और चिन्तन करता था। उसका जीवन पवित्र

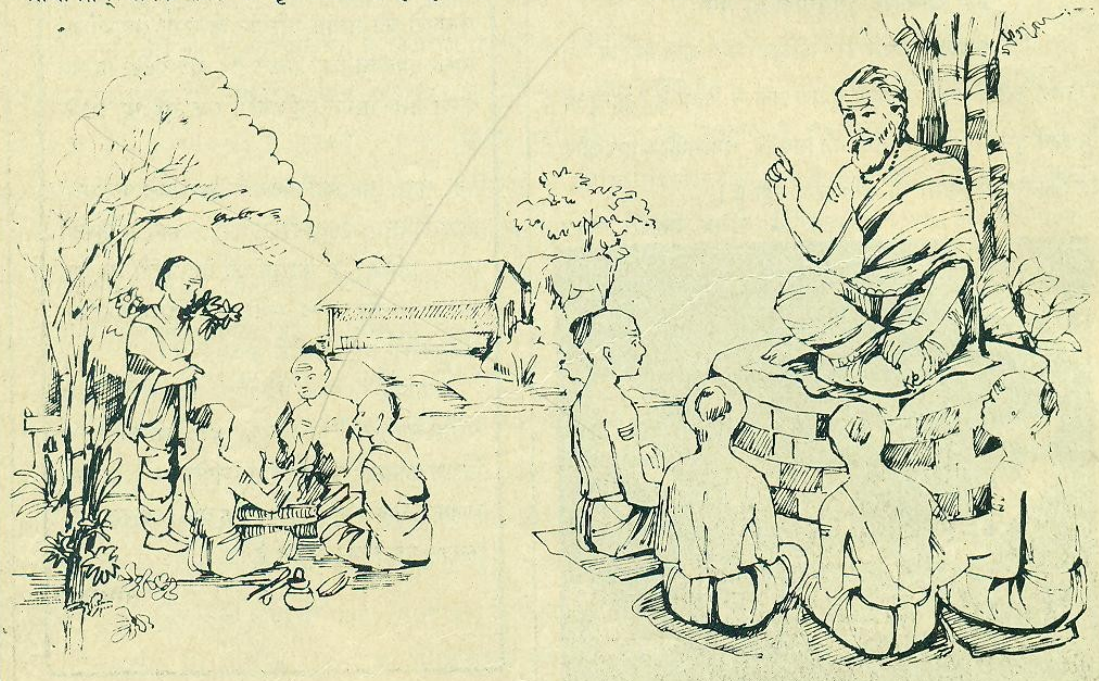

था। वह केवल पुस्तकों के ज्ञान तक सीमित न रह जगत तथा समाज का व्यावहारिक ज्ञान उपलब्ध करता था।

विद्यार्थी का गुरू के घर रहना, उसकी सेवा करना एक अद्‌भुत भारतीय परम्परा है। जो आज तक विश्व के किसी देश में नहीं देखी गयी। इस प्रकार गुरू के निकटतम सम्पर्क से विद्यार्थी में स्वाभाविकरूप से गुरू के गुणों का समावेश हो जाता था। विद्यार्थी के व्यक्तित्व के विकास के लिये यह अनिर्वाय था।

इसके अलावा भारतीय शिक्षा प्रणाली की एक विशेषता यह थी, कि शिक्षा जीवनपयोगी थी। गुरू के साथ रहकर विद्यार्थी समाज के सम्पर्क में आता। गुरू के गृहकार्य उसका कर्तव्य थे। वह इस प्रकार न केवल गृहस्थ का शिक्षण पाता, किन्तु श्रम और सेवा का आदर्श पाठ भी सीखता। यह वह प्रणाली थी, जिससे छात्र विनय और अनुशासन को ग्रहण करता। जीवन में उन्हें ढालता और जो बातें आज एक समस्या है, वे इस प्रणाली से स्वतः हल हो जाती। हम सत्यकाम जाबाल की कथा सुनते हैं। जो विद्यार्थी जीवन मे अपने गुरू की सैकडो गायों (४०० से १०००) को चराते थे।

इससे यह सिध्द होता है, कि भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली सैद्धान्तिक मात न होकर जीवन की वास्तविकताओं से छात्र का परिचय कराती थी। ऋग्वेद में उदाहरण मिलते हैं, कि उस युग में छोटे छोटे पारिवारिक विद्‌यालय होते थे। विद्यार्थियों के रहने की व्यवस्था भी गुरू के घर पर ही होती थी। रहन सहन तथा सदाचार के नियम निश्चित थे। प्रारंभिक शिक्षा सभी को दी जाती, किन्तु उच्च शिक्षा केवल उन्हीं को दी जाती थी, जो इसके योग्य होते थे।

यद्यपि ऋग्वेदकालीन शिक्षा प्रधातनः धार्मिक और दार्शनिक थी। तथापि साधारण जनता के लिये लौकिक व लाभदायक शिक्षा की व्यवस्था भी थी। तत्कालीन आर्थिक, राजनीतिक और औद्योगिक विकास को देखें तो सहज ही यह समझ मे आ जाता है, कि किस प्रकार देश धन धान्य से परिपूर्ण था। देश में कृषि, विनिमय और व्यापार उन्नत दशा में थे। यह सम्पन्नता भौतिक, विज्ञान और कलाओं मे सर्वसाधारण के शिक्षित होने का परिणाम था। चरागाह, पशुपालन और कृषिविज्ञान उन्नत थे। हस्तकला मे भी लोग दक्ष होते। वस्तु, विनिमय, ऋण, साहूकारी व व्याज का प्रचलन भी हम देखते हैं। समुद्री व्यापार का उल्लेख वेदों में मिलता है।

प्राचीन शिक्षा प्रणाली में विद्यार्थी - जीवन का आधार पूर्णतः वैज्ञानिक चिन्तन पर था। वह एक नियमित, सुचालित और स्थिर आधार पर टिका हुआ था। जिसमें समय, समाज और शासन के परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं पडता था। जैसा कि आजकल पडता है। विद्यार्थी के लिये "ब्रम्हचारी" ऋग्वेद का प्रयोग किया जाता था। "ब्रम्हचर्य" हिन्दू धर्म की विशाल और सुदृढ आधारशिला है।

एक निश्चित आयुवर्ग में "उपनयन-संस्कार" के बाद बालक "ब्रम्हचारी" कहलाता है। यह उसका दूसरा जन्म माना गया है। इसलिये वह "दिग्विजय" है। वेशभूषा, आचरण की दृष्टि से वह अन्य सामाजिक व्यक्तियों से भिन्न होता है। उसकी दिनचर्या के नियम उसके जीवन मे कतिपय स्थायी गुणों का विकास करते हैं। इस प्रकार प्राचीन भारतीय विद्यार्थी त्याग, तपस्या, नियम और सात्विकता की प्रतिमूर्ति है। उसे शारीरिक और आध्यात्मिक अनुशासन का पालन करना होता है।

उस युग मे ब्रम्हचर्य का पालन स्त्रियाँ भी किया करती थीं। वे अपने छात्रजीवन में ब्रम्हचर्य से रहकर अपना अध्ययन सम्पन्न कर गृहस्थजीवन में प्रवेश करती और राष्ट्रनिर्माण में भागीदारी करतीं। ब्रम्हचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।

छात्र जीवन में "अनध्‌याय" भी (अध्ययन से अवकाश) रखा जाता था, पर्वो पर वर्षकाल में और अन्य प्राकृतिक आपदाओं के समय।

वैदिक कालीन शिक्षा भारत में क्या, विश्व में शिक्षा का सर्वप्रथम व्यवस्थित रूप माना जा सकता है। चूंकि तब तक "लिपि" का विकास नहीं हुआ था और अध्ययन- अध्यापन मौखिक थे। इस युग की शिक्षा प्रधानतः आध्यात्मिक व धार्मिक थी। तथापि भौतिक समृध्दि की इसमें उपेक्षा न थी। ऋग्वेद के अलावा यजुर्वेद और अथर्ववेद में इसके पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं।

❑ **मांगीलाल मिश्र**
प्रिन्सिपल
दधीच नगर